'सामान्यीकरण' की अवधारणा एवं समावेशी शिक्षा

अखिलेश कुमार*
कीर्ति सिंह**
आर. एल. गोदारा***

प्रत्येक शैक्षिक अवधारणा के नेपथ्य में एक सुसंरचित शैक्षिक दर्शन होता है। समावेशी शिक्षा भी इसका अपवाद नहीं है, परंतु समावेशी शिक्षा शब्द जितना लोकप्रिय हुआ उसके विपरीत 'सामान्यीकरण की अवधारणा' जिसमें विशेष एवं समावेशी शिक्षा का संपूर्ण दर्शन एवं समस्त सिद्धांत समाहित हैं, उसकी हमेशा से उपेक्षा की गई। सामान्यीकरण की अवधारणा की, न केवल बी. एड. एवं एम. एड. (विशेष शिक्षा) के पाठ्यक्रम में उपेक्षा की गई है, बल्कि बी.एड. एवं एम.एड. (सामान्य) के पाठ्यक्रमों में भी इसे कोई स्थान नहीं दिया गया है। वर्तमान शोध पत्र समावेशी शिक्षा के शिक्षा दर्शन के रूप में 'सामान्यीकरण की अवधारणा' पर एक व्यापक विचार-विमर्श करने का प्रयास है, क्योंकि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत जो सेवाएँ दिव्यांगजनों को उपलब्ध करवाई जा रही हैं, उन सभी का मूल वस्तुतः 1969 में नीरजे द्वारा दी गई सामान्यीकरण की मान्यता है। यहाँ इसका उल्लेख करना समीचीन होगा कि 'समावेशन' (इंक्लूजन) की अवधारणा का पूर्ववर्ती यथा आत्म-निर्धारण (सेल्फ़ डिटरमिनेशन), निःशक्तजनों के अधिकार (राइट ऑफ़ पर्संस विद डिसएबिलिटीज़) एवं 'समेकन' (इंटीग्रेशन) की सर्वप्रथम परिभाषा भी नीरजे ने ही दी थी। विशेष एवं समावेशी शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि आठ आयामों में परिभाषित सामान्यीकरण की अवधारणा समावेशी शिक्षा का आधार स्तंभ है। वर्तमान शोध पत्र सामान्यीकरण की अवधारणा एवं समावेशी शिक्षा के सिद्धांतों का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है जो यह स्पष्ट करने में सहायक हो सके कि समावेशी शिक्षा के पीछे सामान्यीकरण की अवधारणा के पदचिह्न हैं और समावेशी शिक्षा को उसकी पूर्णता में समझने के लिए सामान्यीकरण की अवधारणा को समझना आवश्यक है।

शिक्षा दर्शन एक महत्वपूर्ण विषय है एवं औपचारिक शिक्षा अथवा विद्यालयी शिक्षा की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसके पीछे एक मज़बूत, सुरचित शैक्षिक दर्शन हो। शैक्षिक दर्शन शिक्षा की दशा एवं दिशा का निर्धारक है जिसका संपूर्ण राष्ट्र पर दूरगामी प्रभाव होता है। वर्तमान समय में समावेशी शिक्षा (विशेषकर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की) वैश्विक स्तर पर अत्यंत लोकप्रिय हुई है एवं विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में नि:शक्त अथवा दिव्यांग विद्यार्थियों हेतु समावेशी शिक्षा पर बल दिया जा रहा है एवं समावेशी शिक्षा, नीति-निर्धारण के आदर्श वाक्य की तरह प्रयोग किया जाता रहा है। समावेशी शिक्षा की विडंबना यह है कि जितनी समावेशी शिक्षा लोकप्रिय हुई उसके अनुपात में समावेशी शिक्षा के

**सहायक आचार्य*, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान 324021
***सहायक आचार्य*, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान 324021
****प्रोफ़ेसर एवं कुलपति*, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान 324021

पीछे निहित दर्शन पर शिक्षाविदों का ध्यान नहीं गया, जिस कारण वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति के लिए समावेशी शिक्षा की परिभाषा अलग-अलग है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में मान्यताएँ अलग हैं और समावेशी शिक्षा को बिना इसकी गहराई में समझे व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार एवं इसका क्रियान्वयन किया जा रहा है, जिसका दुष्परिणाम यह देखा जा रहा है कि समावेशी शिक्षा के मायने प्रत्येक विशेषज्ञ के लिए अलग हैं एवं अभी तक समावेशी शिक्षा की कोई सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है।

वैश्विक स्तर पर जितनी भी समावेशी सेवाएँ आरंभ की गई हैं उन सभी की जड़ें 1970 के दशक में आई 'सामान्यीकरण' की अवधारणा है, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय डेनमार्क के बैंक मिक्केल्सन को जाता है (फ़्लान, 1977) जिन्हें प्रायः 'सामान्यीकरण' की अवधारणा का जनक (फ़ादर ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन) के रूप में भी जाना जाता है, परंतु इसे सुपरिभाषित करने एवं लिखित रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय स्वीडिश स्कॉलर बेंजट नीरजे को जाता है (पेरिन एवं नीरजे, 1984; मिक्केल्सन, 1980)। समेकन, समावेशन, आत्म-निर्धारण एवं दिव्यांगजनों के जीवन की गुणवत्ता के उन्नयन हेतु किए जा रहे पुनर्वास संबंधी समस्त सेवाओं के आरंभ के लिए सामान्यीकरण की अवधारणा उत्तरदायी है। समावेशी शिक्षा के दर्शन के रूप में 'सामान्यीकरण' की अवधारणा को समझने के लिए, 1970 एवं उससे पूर्व के दशक में पाश्चात्य देशों में दिव्यांगजनों की स्थिति पर दृष्टिपात करना होगा जब दिव्यांगजनों के कल्याण एवं उसके एक भाग के रूप में दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा पर पूरे विश्व का ध्यान धीरे-धीरे आकर्षित हो रहा था।

वस्तुतः दूसरे विश्व युद्ध के दौरान पाश्चात्य देशों में बहुत सारे सैनिक अक्षमता ग्रस्त होकर लौटे और राष्ट्र प्रेम की भावना के कारण अक्षमता युक्त सैनिकों के पुनर्वास के लिए बड़े-बड़े संस्थान बनाए गए। इन संस्थानों में हज़ारों की संख्या में नि:शक्त सैनिकों को रखा गया और साथ ही इनके साथ अन्य नि:शक्तता युक्त व्यक्तियों को भी रखा गया जिसे 'संस्थानीकरण' (इंस्टीट्यूशनलाइज़ेशन) के नाम से जाना जाता है (जूल, 1978)। कुछ दिन तक 'संस्थानीकरण' (इंस्टीट्यूशनलाइज़ेशन) अत्यंत लोकप्रिय हुआ, परंतु बाद में धीरे-धीरे इन संस्थानों की स्थितियाँ खराब होने लगी, क्योंकि आरंभिक दिनों में जहाँ पाश्चात्य देशों के नागरिक इन संस्थानों पर होने वाले भारी भरकम व्यय का भार प्रसन्नतापूर्वक उठा रहे थे, उन्होंने धीरे-धीरे इसे एक बोझ समझते हुए संस्थाओं को प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता कम कर दी अथवा बंद कर दी। फलतः यह बड़ी-बड़ी संस्थाएँ वहाँ की सरकारों पर एक बोझ बन गईं और इन संस्थाओं की स्थिति दैनंदिन दयनीय होती चली गई। इन संस्थाओं में नि:शक्त व्यक्तियों की सेवा में नियुक्त कर्मचारी कम हो गए, उन्हें दी जा रही सेवाओं की गुणवत्ता बहुत ही खराब हो गई और संस्थाओं के निवासी जानवरों से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर थे (नीरजे, 1969, 1970, 1985, 1994; कुमार, 2013 एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

नीरजे ने अपनी पुस्तक के अध्याय *ए विज़िटर्स लुक ऑफ़ यूएसए इंस्टिट्यूशंस* में अपने निरीक्षण के अनुभवों को शेयर करते हुए लिखा है कि जब वे एक संस्था में गए तो वहाँ एक अंतहीन कतार में सैकड़ों बिस्तर लगाए गए थे, जहाँ पर चार साल के बालक

से लेकर 70 साल के बुजुर्ग तक एक साथ रखे गए थे और वहाँ पर उन्होंने देखा कि कई लोगों के पास जीने के न्यूनतम साधन भी उपलब्ध नहीं थे। आगे अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जब वे एक बैरक में गए तो उन्होंने देखा कि एक नि:शक्त बच्चे ने अपने बिस्तर के पास ही शौच कर रखा है और अपने मल से खेल रहा है। मल का कुछ भाग उसके मुंह में भी लगा है। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि उन संस्थाओं में नि:शक्तजनों की जीवन की गुणवत्ता का सर्वथा अभाव पाया और उन संस्थाओं में रखे गए नि:शक्त व्यक्तियों की स्थिति जानवरों से भी बदतर देखी। कमोबेश वैश्विक स्तर पर खोली गई इन सभी संस्थाओं की स्थिति लगभग समान थी। धीरे-धीरे विभिन्न देशों के नागरिकों को यह आभास हुआ कि यदि यह संस्थाएँ आने वाले दिनों में चलती रही तब अक्षमता युक्त व्यक्ति देश एवं समाज पर एक बोझ मात्र बनकर रह जाएँगे एवं राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग उनके रखरखाव एवं देखभाल पर खर्च होगा (क्युगेल और वोरफ़ेंसबर्गर, 1969)।

विभिन्न संस्थाओं की दयनीय हालत ने विसंस्थानीकरण (डिइंस्टीट्यूशनलाइज़ेशन) आन्दोलन को जन्म दिया (मिक्केल्सन, 1980) जिसका तात्पर्य था नि:शक्त व्यक्तियों को बड़ी-बड़ी संस्थानों से बाहर लाकर छोटे-छोटे समुदाय आधारित गृह में रखा जाए एवं उन्हें समाज का एक उपयोगी सदस्य बनाने का प्रयास किया जाए तथा उसी समुदाय में उसके पुनर्वास के लिए विभिन्न उपाय किए जाएँ। जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी 'विसंस्थानीकरण डिइंस्टीट्यूशनलाइज़ेशन' एवं 'सामान्यीकरण' की अवधारणा का जनक 'नील एरिक बैंक मिक्केल्सन' (मिक्केल्सन, 1969, 1980) को माना जाता है, परंतु सामान्यीकरण (नॉर्मलाइज़ेशन) की अवधारणा को व्यवस्थित एवं लिखित रूप में सुपरिभाषित करने का श्रेय नीरजे को जाता है (नीरजे, 1969, 1985; पेर्रिन एवं नीरजे, 1984)। दैनिक जीवन में एक सामान्य व्यक्ति की दिनचर्या के तुलनात्मक अध्ययन एवं उसकी सुंदर व्याख्या के माध्यम से नीरजे ने सामान्यीकरण के आठ आयामों का वर्णन किया है (पर्सके, 2004) जो किसी व्यक्ति के सामान्य जीवन का एक भाग है एवं उसकी जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करते हैं। नीरजे ने यह स्पष्ट किया कि सामान्यीकरण का तात्पर्य 'अक्षमता युक्त व्यक्तियों के प्रतिदिन के जीवन के पैटर्न को सामान्य जनजीवन के पैटर्न के समान यथासंभव बनाने का प्रयास ही सामान्यीकरण है' (नीरजे, 1969, 1985; पेर्रिन एवं नीरजे, 1984)। नीरजे के समान ही बैंक मिक्केल्सन ने सामान्यीकरण को परिभाषित करते हुए वर्णन किया है कि सामान्यीकरण का सामान्य अर्थ है दिव्यांग व्यक्तियों को यथासंभव वे सभी अवसर उपलब्ध करने का प्रयास जो एक सामान्य व्यक्ति को उसके जीवन में उपलब्ध होते हैं (मिक्केल्सन, 1969, 1980)। यहाँ पर यह चर्चा करना भी समीचीन होगा कि सामान्यीकरण की अवधारणा का विकास सर्वप्रथम बौद्धिक अशक्तता व्यक्तियों हेतु किया गया था, जिसकी सफलता के उपरांत इसे समस्त दिव्यांग व्यक्तियों हेतु सामान्यीकृत कर दिया गया।

नीरजे द्वारा दी गई सामान्यीकरण की अवधारणा

आठ आयामों में विभाजित 'सामान्यीकरण की अवधारणा' का लिखित विवरण सर्वप्रथम 1969 में वुल्फ वोल्फ़ेंसबर्गर की अध्यक्षता में गठित प्रेसिडेंट कमिटी ऑन मेंटल रीटारडेशन में प्रकाशित

© NCERT not to be republished

हुआ जो वुल्फ वोल्फेन्सबर्गर द्वारा सम्पादित मोनोग्राफ़ था एवं उसका शीर्षक 'चेंजिंग पैटर्न ऑफ़ रेज़िडेंशियल सर्विसेज फ़ॉर चिल्ड्रेन विद मेंटल रिटार्डेशन इन डेनमार्क' था (नीरजे, 1969, 1985; वोल्फ़ेंसबर्गर, 1983; कुमार, 2013 एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)। वस्तुतः अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन एफ केनेडी ने वुल्फ वोल्फ़ेंसबर्गर की अध्यक्षता में 1964 में कमेटी बनाई थी एवं इस कमेटी को यह ज़िम्मेदारी दी गई थी कि वह डेनमार्क एवं अन्य स्वीडिश देशों में जाकर यह अध्ययन करें कि वहाँ पर बौद्धिक आवश्यकता युक्त बच्चों के पुनर्वास के लिए किस प्रकार की सेवाएँ दी जा रही हैं और तदनुसार उन सेवाओं को अमेरिका में कैसे लागू किया जा सकता है, इस पर अपनी अनुशंसा प्रदान करें। ऐसी मान्यता है कि अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी की एक बहन बौद्धिक आवश्यकता से युक्त थी, जिसके कारण अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी इस अध्ययन के लिए प्रेरित हुए। इस कमेटी के सदस्यों ने डेनमार्क एवं स्वीडन की यात्राएँ की और वहाँ पर बौद्धिक आवश्यकता युक्त व्यक्तियों को प्रदान की जाने वाली सेवाएँ देखीं और तदनुसार अमेरिकी सरकार को अपनी अनुशंसाएँ दीं। बेंजट नीरजे एक स्वीडिश स्कॉलर थे जिन्होंने स्वीडन में सामान्यीकरण की अवधारणा को क्रियान्वित किया था एवं उसे सुपरिभाषित किया और उसे पूरे विश्व के सामने रखा। सामान्यीकरण की अवधारणा, जैसा कि हम पहले बात कर चुके हैं, आठ आयामों में विभाजित है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. **दिवस की एक सामान्य लय (ए नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द डे)**— सामान्यीकरण की अवधारणा का पहला आयाम है 'नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द डे' जिसका तात्पर्य है कि एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही एक बौद्धिक आवश्यकता युक्त या अन्य नि:शक्तता युक्त व्यक्ति और बच्चे को एक सामान्य दिनचर्या प्राप्त करने का अधिकार है। अपने सामान्य दिनचर्या में एक बच्चा अपनी इच्छा के अनुसार अपने दैनिक क्रियाकलापों को सम्पादित करता है, जैसे— जागना, स्नान, भोजन आदि कार्यों में उसे सीमित स्वायत्तता होती है, जबकि उन बड़े-बड़े संस्थानों की कल्पना करें तो उन संस्थानों में स्थितियाँ ऐसी थीं कि नि:शक्तता युक्त बच्चा या व्यक्ति सोना, खाना, जागना, मनोरंजनात्मक कार्य इत्यादि अपनी इच्छानुसार करने के लिए स्वतंत्र नहीं थे। बल्कि उनके लिए एक नीरस रूटीन बना हुआ था जो कि उनके लिए कार्यरत स्टाफ़ के सुविधानुसार निर्मित किया गया था। वहाँ रहने वाले नि:शक्तता युक्त व्यक्ति को इसकी इज़ाज़त नहीं थी कि वह अपनी इच्छा के अनुसार समय पर जागे, अपनी इच्छा के अनुसार खाना खाए, अपनी इच्छा के अनुसार नहाए धोए, अपने अनुसार बिस्तर पर जाए या अपने अनुसार कोई मनोरंजनात्मक कार्य कर सके। उनकी समस्त दिनचर्या उनके स्टाफ़ की उपलब्धता और उसकी समय-सारणी पर निर्भर थी। नीरजे ने तर्क दिए कि वे चाहे सौम्य अथवा गंभीर नि:शक्तता युक्त व्यक्ति ही क्यों ना हो उसे भी एक सामान्य दिनचर्या अनुभव करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, उसे भी उसकी इच्छा के अनुसार सोने, जागने, तैयार होने, खेलने इत्यादि के लिए

पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

2. **सप्ताह की एक सामान्य लय (नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द वीक)**— नीरजे द्वारा दिए गए सामान्यीकरण की अवधारणा का दूसरा आयाम है सप्ताह की एक सामान्य लय 'नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द वीक' अर्थात् प्रायः हम देखते हैं की सभी व्यक्ति सप्ताह में कुछ दिन काम करते हैं और कुछ दिन आराम करते हैं ताकि हमारी दिनचर्या में परिवर्तन हो और हम उस एकरसता से बाहर आ सकें, परंतु बड़े-बड़े संस्थानों में, उनके निवासी नि:शक्तता युक्त बच्चों के लिए न कोई रविवार था और ना कोई अन्य छुट्टी का दिन था। प्रत्येक दिन उनकी दिनचर्या और उनका जीवन नीरस तरीके से बीतता था। उनका स्टाफ़ आता था, उन्हें जगाता था, उन्हें नहलाता-धुलाता एवं तैयार करता था और अपने समय से भोजन प्रस्तुत करता था। शाम को ड्यूटी समाप्ति के पश्चात् स्टाफ़ अपने समय से उन्हें सोने के लिए छोड़ कर चला जाता था। बेंजट नीरजे ने बताया कि जिस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति सप्ताह में रविवार की छुट्टियों का आनंद उठाता है और अपने दैनिक क्रियाकलापों से हटकर कई बार अपनी इच्छा के अनुसार अन्य काम करता है, ऐसे ही नि:शक्तता युक्त व्यक्तियों को भी अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वह भी साप्ताहिक दिनों का आनंद ले सकें (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

3. **एक सामान्य वार्षिकचर्या की लय (नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द ईयर)**—नीरजे के सामान्यीकरण की अवधारणा का तीसरा बिंदु 'नॉर्मल रिद्म ऑफ़ द ईयर' है। एक सामान्य व्यक्ति वर्ष में, अपने जीवन के महत्वपूर्ण कई अवसरों, उत्सवों, त्यौहारों आदि का आनंद उठाता है। उदहारण के लिए, वह अपना जन्मदिन मनाता है, वह अपनी शादी की वर्षगाँठ मनाता है, अपने धार्मिक उत्सव मनाता है, वर्ष में कभी छुट्टियाँ लेकर बाहर घूमने जाता है ताकि वह पुनः तरो-ताज़ा हो सके और आकर दोबारा काम पर लग सके, परंतु बड़े-बड़े संस्थानों में इस प्रकार के कोई प्रावधान नहीं थे। पूरे सप्ताह, पूरे महीने और पूरे वर्ष समस्त दिव्यांग व्यक्तियों का जीवन नीरस बना हुआ था, वे किसी भी प्रकार के उत्सव के आनंद से पूर्णतया वंचित थे। नीरजे ने यह स्पष्ट किया कि जहाँ तक संभव हो सके एक सामान्य व्यक्ति के सामान ही दिव्यांग व्यक्ति एवं विद्यार्थी जो विभिन्न संस्थानों में रखे गए थे, उनके जीवन में भी विभिन्न उत्सवों, व्यक्तिगत महत्व के दिनों, भ्रमण इत्यादि के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वे जीवन का संपूर्ण आनंद ले सकें (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

4. **जीवन चक्र में विकास का एक सामान्य अनुभव (नॉर्मल डेवलपमेंटल एक्सपीरियंसिस ऑफ़ लाइफ़ साइकिल)**— सामान्यीकरण की अवधारणा का यह चौथा आयाम है। यह जीवन चक्र में सामान्य विकास के अनुभव के महत्व को दर्शाता है। सामान्यतया

© NCERT not to be republished

हमारे समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने हमउम्र व्यक्ति के साथ रहना पसंद करता है एवं उनके साथ रहकर आनंदित भी होता है। किसी भी समाज में यह देखा गया है कि बच्चे, बच्चों के साथ, किशोर, किशोरों के साथ, वयस्क, वयस्कों के साथ और बुज़ुर्ग, बुज़ुर्गों के साथ रहकर ज़्यादा आनंद प्राप्त करते हैं और ज़्यादा सीखते हैं, परंतु उन संस्थानों की स्थिति इतनी भयावह थी कि वहाँ तीन साल और चार साल के बच्चे को भी 60 साल, 65 साल, 70 साल के बुज़ुर्गों के साथ, बिना आयु समूह का ध्यान रखते हुए, रखा गया था और सबको एक-सी सेवाएँ ही प्रदान की जाती थीं। नीरजे ने माना कि यह सर्वथा अनुचित है कि दो साल के एक बच्चे को 60 साल के बुज़ुर्ग के साथ रखा जाए। ऐसे में बच्चे बचपन के अनुभवों से वंचित रह जाते हैं और कई बार बुज़ुर्गों जैसा व्यवहार सीखने और करने लगते हैं और यही बात सभी आयु समूह के व्यक्तियों के लिए भी लागू होती है, क्योंकि जीवन में विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति की विकासात्मक आवश्यकताएँ, आर्थिक आवश्यकताएँ, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। ऐसे में नीरजे का मानना था कि यह गलत एवं अन्यायपूर्ण है कि नि:शक्तता युक्त व्यक्तियों के समूहन में आयु का ध्यान न रखा जाए। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि बच्चों को, बच्चों के साथ, युवाओं को युवाओं के साथ एवं बुज़ुर्गों को बुज़ुर्गों के समूह में रहने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ताकि, एक बच्चे को सामान्य विकासात्मक अनुभव प्राप्त हो सके (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

5. **भिन्न-जेंडर संबंधों का एक सामान्य अनुभव (नॉर्मल एक्सपीरियंस ऑफ़ हेट्रो-जेंडर रिलेशनशिप)**— सामान्यीकरण की अपनी व्याख्या में नीरजे ने जो पाँचवीं बात कही, वह सामान्य विपरीत जेंडर अनुभव की थी। इस संकल्पना को समझने के लिए हमें एक बार फिर नि:शक्तता युक्त व्यक्तियों हेतु बनाए गए बड़े-बड़े संस्थानों की व्यवस्था पर दृष्टिपात करना होगा, वहाँ की सामान्य व्यवस्था को समझना होगा। 'संस्थानीकरण' की व्यवस्था में प्रायः ऐसी व्यवस्था की गई थी कि समस्त पुरुष अलग वार्ड में रखे जाते थे और समस्त स्त्रियाँ अलग वार्ड में रखी जाती थीं। साथ ही, पुरुष दिव्यांगजनों की सेवा के लिए जो कार्मिक नियुक्त किए गए थे, वे सभी पुरुष होते थे और स्त्रियों के वार्ड में नियुक्त कार्मिक स्त्रियाँ होती थीं, जबकि सामान्य जीवन में एक व्यक्ति इस प्रकार के वातावरण में नहीं रहता है। सामान्य जीवन में व्यक्ति के घर में माता-पिता, दादा-दादी, ताऊ-ताई, भाई-भाभी इत्यादि सभी लोग होते हैं जिनके साथ रहते हुए एक सामान्य बच्चा विपरीत जेंडर अनुभव युक्त जीवन व्यतीत करता है। नीरजे का मानना था कि दिव्यांग व्यक्तियों के जीवन में भी विपरीत जेंडर के अनुभव का एक महत्वपूर्ण स्थान है और उनकी सेवा में जो कार्मिक लगे हैं, उनमें भी पुरुषों-स्त्रियों का समन्वय होना चाहिए। पुरुषों के वार्ड में सेवा करने के लिए सामाजिक

भूमिका के अनुसार स्त्रियाँ भी होनी चाहिए और स्त्रियों के वार्ड में भी काम करते हुए सामाजिक भूमिका के अनुसार पुरुष स्टाफ़ होने चाहिए ताकि दिव्यांग व्यक्ति चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री, वह यह सीख सके कि विपरीत जेंडर के व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करते हैं (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

6. **आर्थिक मानकों का सामान्यीकरण (नॉर्मलाइज़ेशन ऑफ़ इकोनोमिकल स्टैंडडर्स)** नीरजे द्वारा विकसित सामान्यीकरण की अवधारणा का जो छठा बिंदु था, वह आर्थिक मानकों का सामान्यीकरण था। आर्थिक मानकों के सामान्यीकरण का तात्पर्य है कि नि:शक्तता की गंभीरता के बावजूद नि:शक्त व्यक्तियों को पर्याप्त आर्थिक स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता होनी चाहिए, भले ही यह आर्थिक स्वायत्तता सीमित ही क्यों ना हो। उदाहरण के लिए, नीरजे ने बताया कि सामान्य जनजीवन में बच्चों को उन्हें जेब खर्च के लिए कुछ राशि दी जाती है जिसे वे अपने अनुसार खर्च करने के लिए स्वतंत्र होते हैं, अपनी पसंद की वस्तु खरीदने के लिए स्वतंत्र होते हैं, परंतु उन संस्थानों में स्थिति यह थी कि वहाँ रहने वाले दिव्यांगजनों को इस प्रकार की कोई आर्थिक स्वतंत्रता नहीं थी, न उन्हें कोई राशि जेब खर्च के लिए दी जाती थी। दिव्यांगजनों की आर्थिक आवश्यकताओं का निर्णय उनके लिए कार्यरत स्टाफ़ करता था। क्योंकि उनके रहने का सारा खर्च सरकार उठाती थी, जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। नीरजे ने यह बताया कि भले ही कोई बच्चा, कोई व्यक्ति गंभीर-अक्षमता युक्त क्यों न हो, तब भी उसे सीमित मात्रा में ही सही, लेकिन एक निश्चित राशि जेब खर्च के लिए दी जा सकती है जैसा कि सामान्य जनजीवन देखा जाता है (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

7. **भौतिक वातावरण का सामान्यीकरण (नॉर्मलाइज़ेशन ऑफ़ फ़िज़िकल सेटिंग्स)** सामान्यीकरण की अवधारणा का सातवाँ बिंदु 'नॉर्मलाइज़ेशन ऑफ़ फ़िज़िकल सेटिंग' अर्थात् भौतिक वातावरण का सामान्यीकरण है, जिसमें नीरजे ने बताया कि एक सामान्य व्यक्ति अपने विभिन्न क्रियाकलापों को अलग-अलग स्थानों पर संपादित करता है। जैसे सोने और आराम करने के लिए वह अपने घर में होता है, उसका कार्यस्थल सामान्यतः उसके घर से अलग किसी दूसरे स्थान एवं वातावरण में होता है, खेलने के लिए वह खेल के मैदान में जाता है जो किसी अन्य स्थल पर होता है, जब वह बीमार होता है तो अस्पताल में जाता है जो किसी अन्य स्थान पर होता है। ठीक इसी प्रकार दिव्यांग व्यक्तियों के भौतिक वातावरण को इस प्रकार संरचित किया जाना चाहिए कि उनमें पर्याप्त विविधता हो और समस्त कार्य एक ही भवन की छत के नीचे न सम्पादित किए जाएँ। दिव्यांग व्यक्तियों के समस्त क्रियाकलाप एक ही भवन की छत के नीचे न होकर अलग-अलग स्थानों पर हों, इसको समझने के लिए भी संस्थानीकरण में जो व्यवस्था थी उन पर विचार करना होगा। संस्थानीकरण की व्यवस्था में सामान्यतया एक बहुत बड़ा कैंपस बनाया गया था जिसमें दिव्यांग

बच्चों एवं व्यक्तियों के लिए समस्त आवश्यक सेवाएँ एक ही कैंपस में उपलब्ध कराई गई थीं ताकि उन्हें किसी भी आवश्यक सेवा अथवा दैनिक गतिविधि के लिए कहीं दूर न जाना पड़े। इस व्यवस्था का प्रेरणा स्रोत दिव्यांगजनों की सुविधा का ध्यान नहीं, बल्कि उनके लिए लगाए गए स्टाफ़ की उपलब्धता एवं उनकी सुविधाओं का ध्यान था। एक ही कैंपस में दिव्यांगजनों के रहने के लिए के लिए घर भी था, उसी में बच्चे के पढ़ने के लिए विशेष आवासीय विद्यालय भी थे, उसी चहारदीवारी के अंदर बीमार पड़ने पर अस्पताल भी होता था, जहाँ बच्चे को ले जाया जाता था और उसी कैंपस की चहारदीवारी के अंदर उन्हें अपने सभी मनोरंजनात्मक कार्य भी सम्पादित करने होते थे। साथ ही प्रायः इस प्रकार के संस्थान सामान्य आबादी से बहुत दूर निर्जन स्थानों पर निर्मित किए गए थे, ताकि इन संस्थानों का सामान्य व्यक्तियों की दिनचर्या में हस्तक्षेप न्यूनतम हो। इसके परिणामस्वरूप समस्त दिव्यांगजन समाज एवं सामाजिक गतिविधियों से दूर होते हुए धीरे-धीरे प्रायः समाज से कट से गए थे। ये बड़े-बड़े पुनर्वास को समर्पित संस्थान अमानवीय कैदखाने की तरह होते जा रहे थे, जहाँ के निवासियों को न कोई स्वतंत्रता थी, न आत्म-निर्धारण की आज़ादी थी, न कोई मनोरंजन की स्वतंत्रता थी। नीरजे ने कड़े शब्दों में इसकी आलोचना की और यह स्पष्ट किया कि यह सर्वथा गलत है। उन्होंने बताया कि दिव्यांग व्यक्तियों की सेवाओं हेतु विभिन्न भौतिक संरचनाएँ भी सामान्य जनजीवन के पैटर्न के अनुरूप ही होनी चाहिए ताकि जीवन में विविधता बनी रहे एवं वे समाज से जुड़कर समाज का एक उत्पादक अंग बन सकें। यहाँ इसकी चर्चा महत्वपूर्ण है कि समस्त भवनों को सुगम बनाने एवं समावेशी बनाने की जो कवायद चल रही है, उसके पीछे 'भौतिक वातावरण के सामान्यीकरण की अवधारणा का क्रियान्वयन है' (पर्सके, 2004; नीरजे, 1969, 1985; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

8. व्यक्ति की पसंद, नापसंद, इच्छाओं एवं प्राथमिकताओं का आदर (वंस च्वाइसिस, विशिस, प्रेफ़रेंसिस टू बी रिस्पेक्टिड)
सामान्यीकरण की अवधारणा का आठवाँ बिंदु है— दिव्यांग व्यक्ति की इच्छाओं, उसकी प्राथमिकताओं, उसकी पसंद, नापसंद का पर्याप्त सम्मान किया जाए, भले ही वह किसी भी प्रकार की अक्षमता अथवा गंभीरता से ग्रसित क्यों ना हो। विभिन्न बड़े-बड़े संस्थानों में दिव्यांग व्यक्तियों की स्थिति बहुत दयनीय थी और उनके विचारों को उनकी बातों को या उनकी इच्छाओं को न तो सुना जाता था, और न ही उन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था, क्योंकि दिव्यांग, विशेषकर, बौद्धिक अक्षमतायुक्त व्यक्तियों के प्रति हमारे समाज की बहुत पुरानी धारणा है कि वे बड़े होकर भी बच्चों के समान ही रहते हैं और ऐसे में उनकी इच्छा उनके पसंद-नापसंद की कोई अहमियत नहीं होती है, क्योंकि वे परिपक्व नहीं हैं। संस्थानों में कई बार उनके स्टाफ़ उनकी इच्छाओं, प्राथमिकताओं को न केवल सुनने से मना करते थे, बल्कि उनका मज़ाक भी उड़ाया जाता था। ऐसे में

© NCERT not to be republished

नीरजे का मानना था कि दिव्यांग व्यक्तियों को बच्चों के जैसा माना जाना गलत है और उनके परिवारजनों को, उनके समाज के लोगों को, उनकी प्राथमिकताओं, उनकी पसंद-नापसंद गंभीरता से लेना चाहिए और उनकी इच्छाओं का, उनकी पसंद-नापसंद का आदर किया जाना चाहिए। अगर देखा जाए तो नीरजे द्वारा दी गई सामान्यीकरण की अवधारणा सामान्य जनजीवन के क्रियाकलापों की अत्यंत सुंदर, वस्तुनिष्ठ एवं संपूर्ण नवीन व्याख्या थी। नीरजे ने संपूर्ण विश्व को यह बताया कि एक दिव्यांग व्यक्ति के लिए, विद्यार्थी के लिए, सामान्य एवं स्वायत्तता युक्त दिनचर्या, वर्षचर्या, जीवन चक्र के विकासात्मक अनुभव, सामान्य जनजीवन के अनुरूप विपरीत जेंडर अनुभव, आर्थिक स्वायत्तता एवं सामान्य भौतिक वातावरण का उतना ही महत्व है जितना इनका महत्व एक सामान्य व्यक्ति के लिए है और इसलिए उन्हें भी सामान्य जनजीवन के उन समस्त अनुभवों को उपलब्ध कराने का यथासंभव प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि एक मानव होने के नाते यह उनका अधिकार है। इस प्रकार नीरजे ने सामान्य अर्थों में समावेशन एवं विशेष अर्थों में समावेशी शिक्षा की प्रथम लिखित वकालत की और अपनी सामान्यीकरण की अवधारणा में इसे स्पष्ट किया। प्रेसिडेंट कमेटी ऑन मेंटल रीटारडेशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद विश्व भर में इस प्रकार के बड़े-बड़े संस्थान बंद किए जाने लगे और उनकी जगह धीरे-धीरे समुदाय आधारित पुनर्वास केंद्र उसका रूप लेने लगे। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए नीरजे ने जो शब्दावली प्रयोग की वह अत्यंत सामान्य शब्द सामान्यीकरण था, जिसकी सामान्यता के कारण न केवल आम जनता, बल्कि विशेषज्ञों ने भी अपने अनुसार उसकी गलत व्याख्या 'दिव्यांग व्यक्तियों को सामान्य बनाने के रूप में कर दी।

यह 'सामान्यीकरण सिद्धांत' का दुर्भाग्य था कि अपने प्रकाशन के कुछ ही वर्षों बाद यह गलत व्याख्याओं का शिकार होता गया, जैसा कि वोल्फेन्सबर्गर ने पाया 'अपनी सरलता एवं बहुतायत से प्रयुक्त होने वाला शब्द होने के कारण सामान्यीकरण' की व्याख्या सभी व्यक्तियों एवं विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार की और अंततः सामान्यीकरण का रूप बदलकर 'नि:शक्त व्यक्तियों को सामान्य बनाने' से रह गया, जबकि सामान्यीकरण का सिद्धांत जैसा कि नीरजे द्वारा दिया गया था, उसका तात्पर्य था "एक अक्षम व्यक्ति को यथासंभव जीवन में वे सभी अवसर उपलब्ध कराना जो कि उस समाज और संस्कृति में सामान्य व्यक्ति को उपलब्ध हैं। सामान्यीकरण का तात्पर्य कदापि अक्षमता युक्त व्यक्तियों को सामान्य बनाने से नहीं था। नीरजे ने अपने शोध पत्र 'सेटिंग द रिकॉर्ड स्ट्रेट' में सामान्यीकरण की अवधारणा के प्रति फैली विभिन्न भ्रांतियों का न केवल ज़िक्र किया है, बल्कि उन्हें स्पष्ट भी किया है कि उसका वास्तव में क्या तात्पर्य है? सामान्यीकरण की अवधारणा के आरंभिक दौर में नीरजे का साथ देने वाले वुल्फेन्सबर्गर ने बाद के वर्षों में अपने विचारों में परिवर्तन किया एवं सामान्यीकरण की अवधारणा पर आधारित सामाजिक भूमिका के सिद्धांत से जुड़े

© NCERT not to be republished

एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसका नाम उन्होंने 'सामाजिक भूमिका उन्नयन (सोशल रोल वैलोराइज़ेशन) रखा। उसके लिए उन्होंने एक फ्रेंच भाषा का शब्द 'वैलोराइज़ेशन' (वैलोराइज़ेशन) का इस्तेमाल किया एवं सामान्यीकरण की अवधारणा से व्यापक, सामाजिक भूमिका उन्नयन की संकल्पना को आगे बढ़ाया (वोल्फ़्रेंसबर्गर, 1983, 2011; ओसबर्न, 2006, 2011; लेवी एवं लेवी, 1986; कुमार, 2013; एवं कुमार, सिंह एवं थ्रेसियाकुट्टी, 2015)।

शैक्षिक निहितार्थ

सामान्यीकरण एवं उसके उपरांत उसका संशोधित रूप सामाजिक भूमिका संवर्द्धन का सिद्धांत समावेशी शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः सामान्यीकरण की अवधारणा समावेशी शिक्षा के मूल तत्व एवं उसके प्रायोगिक निहितार्थों को समझने में सहायक है। यदि सामान्यीकरण की दृष्टि से देखा जाए तो समावेशी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो दिव्यांग विद्यार्थी को एक सामान्य दैनिकचर्या अनुभव करने में सहायक हो। वह सामान्य विद्यार्थी की तरह साप्ताहिक दिनों का आनंद उठा सकें, साथ ही वे अपने जन्मदिन, त्यौहारों आदि को समझ सकें। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो दिव्यांग विद्यार्थी को सामान्य बच्चे के यथासंभव समान अनुभव प्रदान करने में सहायक हो और यथासंभव सामान्य दिनचर्या सीखने-सिखाने हेतु उपयुक्त हो। इसके अतिरिक्त सामान्यीकरण की अवधारणा में यह भी समाहित है कि दिव्यांग विद्यार्थियों को भी समान आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की जाए, ताकि वे पैसों के लेन-देन के व्यावहारिक पक्ष को समझ सकें। एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो कही गई है, यह है कि उनकी पसंद-नापसंद, इच्छाओं, प्राथमिकताओं एवं विकल्पों के चयन आदि को पर्याप्त महत्व दिया जाए। सामान्यतः वर्तमान समय में भी देखा जाए तो समावेशी विद्यालयों में भी कई बार दिव्यांग विद्यार्थी उपेक्षा के शिकार होते हैं और विशेषकर सार्वजनिक गतिविधियों एवं क्रियाकलापों में या तो उनके विचार लिए नहीं जाते या फिर उन्हें 'बचपना' समझ कर उनकी उपेक्षा कर दी जाती है और इस प्रकार समावेशी शिक्षा का मूल भाव ही समाप्त हो जाता है। यदि एक शिक्षक इस तथ्य से जागरूक हो कि सामाजिक भूमिका संवर्द्धन समावेशी शिक्षा का उद्देश्य है और इस हेतु दिव्यांग विद्यार्थी के विचारों, इच्छाओं आदि को भी उसके हमउम्र विद्यार्थियों के समान ही सुना जाना चाहिए और उपयुक्त होने पर पर्याप्त महत्व भी देना चाहिए। सामान्यीकरण की अवधारणा दिव्यांगतायुक्त विद्यार्थियों के लिए भी सह-शिक्षा की वकालत करती है ताकि उनके उपयुक्त सामाजिक अनुभव, सामाजिक संरचना के अनुरूप हो सकें। समावेशी शिक्षा हेतु भौतिक वातावरण को दिव्यांग विद्यार्थी के लिए सुलभ बनाने की बात भी सामान्यीकरण की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण अंग है ताकि आवागमन एवं अपने दैनिक कार्यों हेतु दिव्यांग विद्यार्थी आत्मनिर्भर हो सकें और सहानुभूति की जगह उन्हें शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो सके। इस प्रकार देखा जाए तो सामान्यीकरण की अवधारणा समानता एवं समता जैसे समावेशी सिद्धांतों की प्रायोगिक एवं सरल व्याख्या है।

सारांशत: समावेशी शिक्षा की संकल्पना 'सामान्यीकरण' की अवधारणा पर आधारित है

© NCERT not to be republished

जिसमें विशेष एवं समावेशी शिक्षा का संपूर्ण दर्शन एवं समस्त सिद्धांत समाहित है, परंतु अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों में इसे उपयुक्त स्थान न प्रदान किए जाने के कारण विशेष एवं सामान्य शिक्षक समावेशन के बारे में जागरूक एवं जानकार होने के बाद भी, समावेशी शिक्षा को उसकी पूर्णता में न समझ पाने के कारण सफल समावेशन के क्रियान्वयन में अपना संपूर्ण योगदान नहीं दे पा रहे हैं और यही कारण है कि आज भी प्राथमिक स्तर पर समावेशन भारत में एक दिवास्वप्न है। समावेशी शिक्षा के पाठ्यक्रम में इसके आधारभूत दर्शन के रूप में सामान्यीकरण की अवधारणा एवं सामाजिक भूमिका उन्नयन के सिद्धांतों का समावेश एक अधिक प्रभावी समावेशी अध्यापक तैयार करने में सहयोगी हो सकता है जो प्रकारांतर में प्रभावी समावेशन के लिए कारगर साबित होगा।

संदर्भ

ओसबर्न, जे., और जी. कारूसो. 2011. सम इफ़ेक्ट ऑफ़ द ट्रानज़िशन फ्रॉम नॉर्मलाइज़ेशन टू सोशल रोल वैलोराइज़ेशन. द *एस.आर.वी. जर्नल*.

ओसबर्न, जे. 2006. एन ओवरव्यू ऑफ़ सोशल रोल वैलोराइज़ेशन. द *एस. आर. वी. जर्नल*. 1(1), पृष्ठ संख्या 4–13.

कुमार, ए. 2013. नॉर्मलाइज़ेशन— गाइडिंग प्रिंसिपल ऑफ़ इक्वल अपॉर्च्युनिटीज़ इन एजुकेशन फ़ॉर चिल्ड्रन डिसेबिलिटीज़ इन इंडिया. *यूरोपियन अकेडमिक रिसर्च*. 1(5), पृष्ठ संख्या 2286–4822.

कुमार, ए., आर. आर. सिंह, ए.टी. थ्रेसियाकुट्टी. 2015. नॉर्मलाइज़ेशन वर्सेज़ सोशल रोल वैलोराइज़ेशन— सिमिलर और डिफ़रेंट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ स्पेशल एजुकेशन*. 30(3), पृष्ठ संख्या 71–88.

क्युगेल, आर. बी. और वोल्फ़ेंसबर्गर. 1969. *चेंजिंग पैटर्न इन रेज़िडेंशियल सर्विसेज़ फ़ॉर मेंटली रिटारडेड*. प्रेसिडेंट कमिटी ऑन मेंटल रिटारडेशन, वाशिंगटन डी. सी.

जूल, के. डी. 1978. यूरोपियन अप्रोचेज़ एंड इनोवेशन इन सर्विंग द हैंडीकैप्ड चिल्ड्रन. *एक्सेप्शनल चिल्ड्रन*. 44, पृष्ठ संख्या 322–340.

नीरजे, बी. 1969. *प्रिंसिपल ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन एंड इट्स ह्यूमन मैनेजमेंट इम्पलीकेशंस*. प्रेसिडेंट कमिटी ऑन मेंटल रिटारडेशन, वाशिंगटन डी.सी.

———. 1970. द नॉर्मलाईज़ेशन प्रिंसिपल— इम्पलिकेशंस एंड कमेंट्स. *जर्नल ऑफ़ मेंटल सबनॉर्मलिटी*. 16, पृष्ठ संख्या 62–70.

———. 1985. द बेसिस एंड लॉजिक ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन प्रिंसिपल. *ऑस्ट्रेलिया एंड न्यूजीलैंड जर्नल ऑफ़ डेवलपमेंटल डिसेबिलिटीज़*. 11, पृष्ठ संख्या 65–68. https://doi.org/10.3109/13668258509008747

———. 1994. प्रिंसिपल ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन एंड इट्स ह्यूमन मैनेजमेंट. द *इंटरनेशनल सोशल रोल वैलोराइजेशन जर्नल*.

पर्सके, आर. 2004. निर्जेज एट प्लांक्स. *मेंटल रिटारडेशन*. 42(2), पृष्ठ संख्या 147–150.

पेरिन, बी., और बी. नीरजे. 1984. सेटिंग द रिकॉर्ड स्ट्रैट— ए क्रिटिक ऑफ़ सम फ्रीक्वेंट मिसकनसेपशन ऑफ़ द नॉर्मलाइज़ेशन प्रिंसिपल. *ऑस्ट्रेलिया एंड न्यूजीलैंड जर्नल ऑफ़ डेवलपमेंटल डिसेबिलिटीज़*. पृष्ठ संख्या 11, 69–74. https://doi.org/10.3109/13668258509008748

© NCERT not to be republished

फ़्लान आर. जे. 1977. इवैल्यूएटिंग नॉर्मलाइज़ेशन, सोशल इंटीग्रेशन एंड एडमिनिस्ट्रेटिव इफ़ेक्टिवनेस. *साइकोलॉजिकल रिहैबिलिटेशन जर्नल*. 7(3), पृष्ठ संख्या 1–12.

बैंक मिक्केल्सन, एन. ई. 1969, 1980. ए मेट्रोपोलिटन एरिया इन डेनमार्क— कोपेनहेगेन. संपादन में. फ़्लान आर.जे. और नीत्से (संपादक). *चेंजिंग पैटर्न इन रेजिडेंशियल सर्विसेज फ़ॉर द मेंटली रिटारडेड*. पृष्ठ संख्या 51–70. यूनिवर्सिटी ऑफ़ नेबासका कॉलेज ऑफ़ मेडिसिन, वांशिंगटन डी.सी.

लेवी. जे., और लेवी, पी. 1986. इश्यूज़ एंड मॉडल्स इन द डिलीवरी ऑफ़ रेस्पाइट सर्विसेज. संपादन में एल, क्रिस्टीन सेलिस्बरी, जेम्स इंटेलियाटा (संपादक). *रेस्पाइट केयर— सपोर्ट फ़ॉर पर्सन्स विद डेवलपमेंटल डिसेबिलिटीज़ एंड देयर फ़ैमिलीज़*.पी. एच. ब्रुक्स पब्लिशिंग कंपनी.

वोल्फ़ेंसबर्गर, डब्ल्यू. 1983. विल देयर ऑलवेज़ बी इंस्टीट्यूशंस— द इम्पैक्ट ऑफ़ एपीडेमोलॉजिकल ट्रेंड्स. *मेंटल रिटारडेशन*. 9(5), पृष्ठ संख्या 14–20.

———. 1983. सोशल रोल वैलोराइज़ेशन— ए प्रोपोज़्ड न्यू टर्म फ़ॉर प्रिंसिपल ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन. *मेंटल रिटारडेशन*. 21(6), पृष्ठ संख्या 234–239.

———. 2011. सोशल रोल वैलोराइज़ेशन—ए प्रोपोज़्ड न्यू टर्म फ़ॉर प्रिंसिपल ऑफ़ नॉर्मलाइज़ेशन.*इंटेलेक्चुअल एंड डेवलपमेंटल डिसेबिलिटीज़*. 49(6), पृष्ठ संख्या 435–440. अमेरिकन एसोसिएशन ऑन इंटलेक्चुअल एंड डेवलपमेंटल *डिसएबिलिटीज़.* https://doi.org/10.1352/1934-9556-49.6.435 से प्राप्त किया गया है.

© NCERT not to be republished